अध्याय दो

मोहन राकेश : साहित्यिक परिचय :

अपनी कृतियों में झाँकता राकेश :

अहंवादी तथा मूर्धन्य नाटककार मोहन राकेश अंतर्द्वंद्व के कुशल शिल्पी है। जिन्दगी की कुरुपता को तथा संघर्ष को उन्होंने अपने नाटकों में बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। लेकिन संघर्षपूर्ण जिन्दगी की उलझनों को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अपनी रचनाओं में मुखोटों के नकलीपन को नहीं अपनाया, अपितु मन की सच्ची कसमसाहट को व्यक्त किया है। राकेश का व्यक्तिगत और पारिवारिक व्यक्तित्व किसी-न-किसी पात्र के जरिए अपनी मनोव्यथा प्रकट करता है। उनकी हर कृति में उनका अपना स्वयं भोगा हुआ जीवन बार-बार झाँकता है। इसलिए रचनाकार राकेश और व्यक्ति राकेश दोनों अभिन्न लगते हैं।

जब हम राकेश के जीवन में झाँकने का प्रयास करते हैं, तब हमें दिखाई देता है, कि राकेश का बचपन, शिक्षा, शादियाँ, नौकरियाँ तथा साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में आंतर तथा बाह्य संघर्ष के ज्वार-भाटों ने ऊधम मचा दिया है। यह एक सर्वमान्य और मनोवैज्ञानिक तथ्य है, कि पारिवारिक एवं घरेलू वातावरण तथा समसामयिक परिस्थितियाँ ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करती है। और राकेश के व्यक्तित्व निर्माण में यह मनोवैज्ञानिक तथ्य नितांत खरा उतरा है। राकेश का जन्म ८ जनवरी, १९२५ को अमृतसर में हुआ। जिस सामान्य परिवार में राकेश का जन्म हुआ था, वह उस काल की भारतीय मानसिकता के अनुसार आर्थिक विषमताओं, रुढियों और परम्पराओंसे घिरा था। जैसे राकेश ने अधूरी, अर्थहीन दुनिया में ही प्रवेश किया। राकेश के पिताश्री करमचन्द गुगलानी, वकील थे, लेकिन वे शास्त्र एवं साहित्य में निष्णात थे।

उन्हें विवशता से वकालत का पेशा अपना पड़ा था । वे एक अच्छे साहित्यिक थे, 'परिस्थितियों ने उनके जीवन में वकालत के रूप में जो अन्तर्विरोध ला दिया, कुछ वैसा ही राकेश को भी अपने प्रारम्भिक एवं परवर्ती जीवन में भोगना पड़ा । इसी कारण उनका सतही जीवन विरोधाभासों का अखाड़ा-सा बन कर आभासित होने लगा ।'[१] इस अस्तित्व-अनस्तित्व के दुधारे पर झूलनेवाली उनकी सुकुमार शैशवी मानसिकता का शिकार-उनके नाटकों के प्राय: सभी प्रकार के सामान्य विशेष पात्र दिखाई देते हैं । शैशवी अवस्था तक राकेश को घर में जिस घुटन भरे वातावरण का अनुभव हुआ, वही घुटन उन्हें आजीवन भोगनी पड़ी और उनके नाटकों के सभी मुख्य पात्र-कालिदास, नन्द, महेन्द्रनाथ, झुनझुनवाला, पण्डित, अयूब आदि - भी अनवरत भोगते रहे । और इसीलिए ये सभी लोग या तो 'घर' से भाग जाना चाहते हैं, या 'घर' से भाग भी जाते हैं और फिर किसी आन्तरिक विवशता के कारण वापस 'घर' लौट भी आते हैं । इसी मानसिक विवशता के कारण ही घर से बार-बार भाग जाकर भी राकेश को 'घर' की चाह आजीवन कचोटती रही और वे जिन्दगीभर 'अपने घर' की तलाश करते रहे ।

ऐसी घुटनभरी जिन्दगी में राकेश सोलहवाँ साल पार कर रहे थे, कि उनके पिता का स्वर्गवास हो गया । कई महीनों का मकान का किराया बाकी था, इसलिए मकान मालिक ने, जब तक मकान का किराया चुकाया नहीं गया तब तक पिता का मुरदा उठाने नहीं दिया । अंत में माँ की चूड़ियाँ बेचकर किराया चुकाया गया । इस घटना से राकेश की एक बनती जिन्दगी पर प्रबल आघात हुआ ।

राकेशजी पिता की मृत्यु के पहले संस्कृत में लिखा करते थे । बाद में उन्होंने संस्कृत छोड़कर एक नए नाम से हिंदी में लिखना शुरु किया और यह नया नाम था 'मोहन राकेश' । उनका असली नाम था मदनमोहन गुगलानी

---

१ अपने नाटकों के दायरे में नाटककार मोहन राकेश : तिलक राय शर्मा - पृ.७

और मोहन राकेश बाद में धारण किया हुआ नाम है।` उनकी कहानियाँ `सरस्वती`, `सरिता` पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी। अनुमान यह लगाया जाता है, कि `नन्हीं` शायद उनकी पहली कहानी है, जो उन्हीं की हस्त-लिपि में स्कूल की परीक्षाओं की लम्बी कापी के कागजों पर लिखी हुई प्राप्त हुई है और उनकी मृत्यु के बाद `सारिका` ( मार्च १९७३ ) में प्रकाशित हुई।[१] `नन्हीं` कहानी ७ मई, १९४४ में लाहौर में लिखी गई - उसकी पाण्डुलिपि पर तरह तरह से `राकेश` लिखकर देखा गया है। सम्भवत: यह प्रक्रिया उपनाम चुनने की रही है, जो बाद में उनका नाम ही हो गया।[२]` राकेश की डायरी के अनुसार उनकी पहली प्रकाशित कहानी `भिक्षु` है। बाद में कमलेश्वर ने राकेश की अप्रकाशित कहानियों को `एक घटना` नाम से प्रकाशित किया।

`भिक्षु` में राकेश की नाट्य यात्रा का बीज बोया हुआ दिखाई देता है।` भिक्षु` एक शुरुआत है,` आषाढ का एक दिन` उसकी विलक्षण व्याप्ति।` नन्हीं` उस यथार्थ की शुरुआत है, जो राकेश के साहित्य का आधार है। राकेश की, ज़िन्दगी की हकीकत उसके साहित्य की भी हकीकत है[३]।`

राकेश ने प्रारम्भिक शिक्षा अमृतसर में प्राप्त की और उसके बाद उच्च शिक्षा के लिए वे लाहौर चले गए। लाहौर के ओरिएण्टल कॉलेज से संस्कृत में एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। परन्तु बढती हुई ज्ञान-पिपासा को शान्त करने के लिए उन्होंने जालंधर में प्राइवेट अध्ययन करते हुए प्रथम श्रेणी लेकर हिन्दी साहित्य में एम.ए. भी किया। बाद में उन्होंने सर्वप्रथम बम्बई में अध्यापन कार्य शुरु किया, परंतु वहाँ के घुटनभरे वातावरण से जल्द ही छुटकारा पाकर वे

---

१ मोहन राकेश और उनके नाटक - गिरीश रस्तोगी - पृ.३४

२ सारिका - मार्च १९७३ - पृ. ६२

३ मोहन राकेश और उनके नाटक - गिरीश रस्तोगी - पृ.३५

शिमला चले गए। १९४५ के आस-पास राकेशने बम्बई में किसी फिल्म कम्पनी में कहानीकार के पदपर काम करना शुरु किया, परन्तु स्वतन्त्र अस्तित्व की रक्षा के लिए उन्होंने वह काम छोड दिया। १९४७ में वे बम्बई विश्वविद्यालय के एलफिन्स्टन कॉलेज में हिन्दी के अतिरिक्त भाषा शिक्षक के रुप में नियुक्त हुए, परन्तु १९४९ में वहाँ भी इस्तीफा दे दिया। उसके बाद जालन्धर में डी.ए.वी.कॉलेज में प्राध्यापक के पदपर नियुक्त हुए। यह काम छः महीने तक किया। उसके बाद शिमला में मिशनरी स्कूल में १९५७ तक नौकरी की। इसी बीच १९५० में राकेश ने एक अनचाही युवती से विवाह किया। पत्नी कमाऊ थी, राकेश की अपेक्षा ज्यादा धन कमाती थी। अतः वह अपने अहं को बनाए रखना चाहती थी। परन्तु राकेश के अहं को कमाऊ पत्नी का अहं रास न आया। इसलिए उससे छुटकारा पाकर ही राकेश ने सुख की साँस ली। अहं - पीडित पत्नी के कारण बने हुए घुटनभरे पर्यावरण ने राकेश को सुन्दरी के अहं से टकराकर, टूटकर घर से भाग जाने वाला नन्द बना दिया। ऐसे घुटनभरे वातावरण ने राकेश के छोटे भाई वीरन को भी कुण्ठित करके घर से बम्बई चले जाने के लिए बाध्य किया।

राकेश के जीवन - नाटक के अगले अंक की शुरुआत जालन्धर में हुई, वहाँ अध्यापन-कार्य आरंभ किया। परंतु वहाँ कालिदास की तरह अध्यापन और साहित्य सृजन के साथ राजनीति की ओर भी कदम बढाना शुरु किया। और जिस प्रकार कालिदास को काश्मीर की राजनीति से मार खाकर पलायन करना पडा और फिर 'अथ' से शुरुआत की कामना लेकर मल्लिका के पास आना पडा, परन्तु समय की लम्बी छलाँग से प्रताडित कालिदास को और कहीं शरण तलाशने के लिए भाग जाना पडा। उसी प्रकार राकेश ने भी प्राध्यापक संघटन की राजनीति में भाग लिया और विवश होकर प्राध्यापकीय पद से त्यागपत्र देकर अपनी मल्लिका (पत्नी) के पास राकेश को भाग जाना पडा, परन्तु अहंग्रस्त

पत्नी से प्रताडित होकर राकेश को एक और घर की खोज में मात्र भटकने के लिए बाध्य हो जाना पडा।

जिस प्रकार राकेश दूसरी पत्नी से भागकर १९६२ में 'सारिका' का सम्पादन करने के लिए बम्बई चले गए, ठीक उसी प्रकार अस्तित्व-अनस्तित्व के झमेले में पडकर नंद प्रवृत्यात्मक बालों का मुण्डन करके निवृत्ति के लिए जंगल में जाकर बाघ से जुझ गया और फिर घर आया, परन्तु सुन्दरी से पीडित होकर उसे फिर से भाग जाना पडा। महेन्द्रनाथ के गृह परित्याग के बाद की वापसी भी इसी विवशता का ही परिणाम है। उसी प्रकार झुनझुनवाला, पण्डित, अयूब आदि सभी इसी मानसिक छटपटाहट से मुक्ति पाने के लिए अपने आपको ताश, शराब के प्यालों में डुबोकर भी अपने पैरों के तले की जमीन को खिसकती अनुभव करते हैं।

'अपने घर' की तलाश के लिए राकेश ने एक के बाद एक कपडे बदलने की भाँति पत्नियाँ बदलीं। पहली पत्नी से मानसिक स्तर पर छुटकारा पाने के बाद राकेश दूसरी गलती कर बैठे। राकेश का दूसरा विवाह हिस्सार में ९ मई १९६० को उनके एक घनिष्ट मित्र की बहन के साथ हुआ। जिन्दगी में खुशियाँ भरने के लिए वे दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन करने लगे। परंतु दूसरी पत्नी मानसिक रुप से विदिप्त थी। राकेश के जीवन में फिर वही घुटन, फिर वही एकान्तप्रियता आई। इस प्रकार की मानसिक अवस्था में ही 'अन्धेरे बन्द कमरे' की रचना हुई। ऐसे घुटनभरे वातावरण से छुटकारा पाने के लिए ही राकेश ने बम्बई में भाग जाकर 'सारिका' का सम्पादन कार्य शुरु किया। लेकिन मानसिक रुप से विदिप्त पत्नी ने वहाँ भी पहुँचकर जो ऊधम मचाया, उससे राकेश के अहं को चोट पहुँची और 'सारिका' का सम्पादकत्व त्यागकर वे वापस दिल्ली चले गए।

१९५७ से १९६२ तक के अन्तराल में राकेश ने दो महत्वपूर्ण रचनाओं का सृजन किया - एक पहला नाटक 'आषाढ का एक दिन' और दो 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास। 'अन्धेरे बन्द कमरे' के मधुसूदन का जीवन भी राकेश का ही प्रतिबिम्ब है। 'सारिका' के सम्पादकत्व का त्यागपत्र देने के बाद राकेश अंत तक स्वतन्त्र रुप से लेखन कार्य करते रहे।

राकेशजी अपनी माँसे बहुत स्नेह रखते थे। सब प्रकार की परिस्थितियों में जूझते रहनेवाली माँ के स्वभाव ने राकेश के व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित किया था। बार - बार घर से टूटकर भी, फिर-फिर घर बसाने की राकेश की दुर्दम्य लालसा का कारण शायद माँ की इच्छापूर्ति या माँ को सुखी रखने की साध ही हो सकता है। राकेश को जिन्दगी में माँ का ही एकमात्र सहारा था, लेकिन एक दिन माँ का सहारा भी टूट गया और राकेश का व्यक्तित्व अन्तस् की गहराई तक टूटकर बिखर गया। दूसरी पत्नी का असंगत व्यवहार और माँ की मृत्यु ने राकेश के अंतस् को गहरी चोट लगी, जिससे राकेश को एक प्रकार से अबूझ बना दिया। यद्यपि परिस्थितियों के झकारों से राकेश बहुत कुछ स्वच्छन्दतावादी बने थे, परंतु फिर भी वे भावुक थे। उनका अपने बच्चों के प्रति होनेवाला स्नेह ही उनकी हार्दिकता और भावुकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। ` उनके पहले बेटे नीते को कभी कभी उनसे मिलने भेज दिया जाता था। उसके आने पर वे सबकुछ भूल जाते थे ... फिर एक बार बम्बई से लौटते समय पूर्वा के लिए खिलौने लाने के लिए परेशान हो गए ... नीते के लिए घोडा बने-बने घूम सकते थे। पूर्वा के खिलौनों के लिए परेशान हो सकते थे। दुनिया भर की खुशियाँ समेट कर अनिता के आँचल में डाल सकते थे।[१] ` इससे लगता है, कि अनिता से शादी करने के बाद राकेश के जीवन में कुछ स्थिरता आ गई हो। परन्तु अनीताजी के साथ रहकर भी उन्हें अकेलापन बार बार कचोटता रहा। ` पता नहीं क्यों अकेला होने से दहशत होने लगी है मुझे। मेरे पास बैठो - मुझे अकेला न छोडो।[२] ` अन्तस् में समाई इसी दहशत ने ही कालिदास को मल्लिका और प्रियंगुमंजरी के साथ भी रहने नहीं दिया, नन्द को सुन्दरी के पास से भाग जाने के लिए बाध्य कर दिया, झुनझुनवाला, पण्डित, अयूब आदि के पैरतले की जमीन खिसका दी। और राकेश भी बार-बार भागकर इस रीतेपन को भरने के सपने देखते रहे, परंतु बार-बार बन्धकर भी वे इस रीतेपन को भर नहीं सके। राकेश के चारों ओर पहलेसे ही वातावरणही कुछ ऐसा था, जिससे उनके मन में घर के प्रति चिढ उत्पन्न

---

१ नाटककार मोहन राकेश - अंतर्विरोधी व्यक्तित्व: राजेंद्रपाल - पृ.२७
२ बन्दसन्तरे और : अनीता राकेश - पृ.९४

हुई। शैशव में अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों का शिकार होना पड़ा। संयुक्त परिवार, घरेलू झगडे, कर्ज का बोझ, बचपन आदि सब ने मिलकर घर नामक संस्था के प्रति उनके मन मस्तिष्क में एक तरह की चिढन और ऊब भर दी। परन्तु इतना होते हुए भी घर जोडने की माया में वे उलझे रहे। ` अनेक चुनौतियों को स्वीकार करने की, बढते जाने की और किसी एक निश्चित मन्जिल पर पहुँचने की यह प्रवृत्ति राकेश के सम्पूर्ण साहित्य में मूर्त हो गई है -- द्वंद्व और गति, उलझन और टकराव ही मुख्य है -- चाहे वह ` एक और ज़िन्दगी ` कहानी हो, चाहे ` अन्तराल ` उपन्यास हो, चाहे सभी नाटक, यहाँ तक कि ` छतरियाँ ` भी।`[१]

कालिदास को मिलनेवाली उपेक्षा वही थी, जिसे राकेश ने अपने आरम्भिक और परवर्ती जीवन में घर और बाहर बार-बार झेला था। उपेक्षा से वे बार-बार आहत होते रहे, परन्तु फिर भी उन्होंने जिजीविषा को निरन्तर बनाए रखा। "हम जिऍंगे हरिणशावक। जिऍंगे न ? एक बाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है, तो क्या हुआ ? हम पीडा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है, तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है।[२]" इसी उँगलियों के कोमल स्पर्श के लिए वे ज़िन्दगीभर भटकते रहे, परन्तु उनके अन्तस को वह कभी नहीं मिल सका। केवल अनचीता, अनचाहा अहं और गर्व ही मिलता रहा। सुन्दरी के रुप में नन्द को जो गर्व मिला, उसने राकेश को निरन्तर अन्तर्द्वंद्व से ग्रस्त कर दिया। अस्तित्व-अनस्तित्व के झकोरों को सहते हुए उनकी अवस्था त्रिशंकु-सी बन गई। उन्होंने कालिदास, नन्द और महेन्द्रनाथ की पीडा को भी झेला और वे उनके समान बार-बार भागकर भी घर आने के लिए विवश होते रहे। जब राकेश के अनुरुप जमीन उन्हें न मिल सकी, विषम परिस्थितियों की बाढ में पैरों तले की जमीन खिसकने लगी, तब वे झुनझुनवाला, अयूब आदि के समान सन्त्रस्त और आन्तरिक रुप से विखण्डित होकर नारी, शराब आदि का सहारा लेकर अन्तस् में घिरे उलझनों के बादलों से टकराते रहे।

---

१ मोहन राकेश और उनके नाटक - गिरीश रस्तोगी - पृ.४२

२ आषाढ का एक दिन : मोहन राकेश - पृ.१५

`आषाढ का एक दिन` नाटक में कालिदासका सृजन कर राकेश ने एक तरह से सर्जक कलाकारों को राजनीति से दूर ही रहने का अव्यक्त सन्देश दिया है। `अपने जीवन को तो अन्ततोगत्वा उन्होंने निश्चय ही एक पूर्ण स्वतन्त्र सर्जक के साँचे में ढाल लिया था। पर इस ढलाव के लिए उन्हें अपने आपसे, अपने जीवन समाज और सभी प्रकार के पर्यावरणोंसे जिस प्रकार का निर्मम संघर्ष करना पडा था, स्यात् उसीने उन्हें असमय ही (३ दिसम्बर, सन् १९७२) तोडकर रख दिया, झुकाया यद्यपि नहीं। एक नव्य ध्रुव का अन्त हो गया।[१]`

निष्कर्ष ::

राकेश अपने समूचे जीवन में अनेक बार नौकरी, विवाह आदि के रुप में पारिवारिक बन्धन स्वीकार करते रहे और हर बन्धन से छुटकारे के बाद ही उन्होंने मुक्ति की साँस ली। इसी मुक्ति के क्षण में ही उन्होंने उच्चकोटि की रचनाएँ प्रस्तुत की। मोहन राकेश ऊपर से तो मोटे, ठहाके बाज, मूडी आदमी लगते थे, लेकिन अन्दर से सन्त्रास, आक्रोश, घुटन आदि से घिरे हुए थे। लगता है, उनका बाहरी व्यक्तित्व एक प्रकार से नकली नाटक ही था और असली नाटक तो उनके अन्तस् में ही चलता था, जो प्राय: रंग-रुप बदल बदलकर प्रकाशित होनेवाले नाटकों के रुप में सामने आता था। `राकेश का अन्त:-बाह्य व्यक्तित्व शतश: खण्डित होकर उसके कृतित्व में सर्वत्र बिखरा पडा है। .... उसके शैशव और कैशोर्य की ऊब महेन्द्रनाथ और सावित्री की छोटी लडकी किन्नी में है, तो यौवन का चांचल्य एवं उबभरा आक्रोश बडी लडकी और लडके अशोक में संचित है। मल्लिका भी उसी की अन्तश्चेतना का एक पक्ष है और सावित्री भी। सब मिलाकर नाटकों के पात्र वास्तव में राकेश के व्यक्तित्व को ही तोडते और जोडते हैं। ... व्यक्तित्व के धरातल पर अपने कृतित्व में, राकेश ने यथार्थवादी ढंग से अपने समूचे कृतित्व में वास्तव में अपना ही प्रयोग किया है। इसी अर्थ में वह प्रयोगधर्मी नाटककार थे।[२]`

---

१ अपने नाटकों के दायरे में मोहन राकेश : तिलकराज शर्मा - पृ.१५

२ अपने नाटकों के दायरे में मोहन राकेश : तिलकराज शर्मा - पृ.२१

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में राकेश ने कहानीकार के रुप में प्रवेश किया, परन्तु उन्होंने निबन्ध ,संस्मरण,आत्मकथा, उपन्यास ,एकांकी और नाटक भी लिखे। राकेशजी ने हिंदी साहित्य को अल्पावधि में ही एक नई भूमि प्रदान की। उनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है :--

नाटक :	प्रथम प्रकाशन वर्ष
१) आषाढ का एक दिन	१९५८
२) लहरों के राजहंस	१९६३
३) आधे - अधूरे	१९६२
४) पैर तले की जमीन	१९७५
५) अण्डे के छिलके और अन्य एकांकी	१९७३
६) रात बीतने तक तथ अन्य ध्वनि-नाटक	१९७४

उपन्यास

१) अन्धेरे बन्द कमरे	१९६१
२) न आने वाला कल	१९७०
३) अन्तराल	१९७३
४) स्याह और सफेद	(प्रकाश्य)
५) लापता हुआ दरिया	,,
६) कई एक अकेले	,,

कहानी संग्रह --

१) इन्सान के खण्डहर	१९५०
२) जानवर और जानवर	१९५८
३) एक और जिन्दगी	१९६१
४) नए बादल	१९५७
५) फौलाद का आकाश	१९६६
६) चेहरे	१९७२
७) क्वार्टर	१९७२

८) वारिस १९७२

९) मेरी प्रिय कहानियाँ १९७१

१०) एक घटना

यात्रा - वृत्त

१) आखिरी चट्टान तक

२) पतझड का रंगमंच (प्रकाश्य)

३) उँची झील

लेख-निबन्ध --

१) परिवेश

२) रंगमंच और शब्द

३) कुछ और अस्वीकार : नई निगाहों के सवाल (प्रकाश्य)
घसिए पर।

४) साहित्यकार की समस्याएँ

डायरी --

१) व्यक्तिगत

अनुवाद --

१) मृच्छकटिक १९६१

२) अभिज्ञान शाकुन्तल १९६५

३) एक औरत के चेहरे

शोध कार्य --

` नाटक में सही शब्द की खोज ` विषय पर नेहरु फेलोशिप के अन्तर्गत कार्य कर रहे थे, परन्तु पूरा नहीं कर पाए।

••